 ISSN : 2583-2948

भारतीय समाज में व्याप्त बाह्याडंबर के प्रति कवियों का आक्रोश

-डॉ. पी. राजरत्नम

अपना वास्तविक रूप छिपाकर लोगों के लिए बनाया हुआ बाहरी कृत्रिम भव्य रूप या दिखावटी एवँ ठाट-बाट की जिन्दगी को न केवल आज, बल्कि बहुत पहले से ही कवियों एवँ साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के जरिए आक्रोश प्रकट करते हुए आए हैं। इस लेख में समाज में व्याप्त बाह्याडंबर के प्रति कवियों भारतीय - का आक्रोश किस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है। इसकी झलक दिखाना ही प्रथम उद्देश्य है।

समाज में जिन कर्मकांडों का प्रचलन हो गया और हो रहा है, आहिस्ता-आहिस्ता उनका असर समाज एवँ परिवार इतना बढ़ता गया कि उन कर्मकांडों द्वारा कुछ विशेष लोग हिलाजत समझते हैं। जीवन में संयम कायम रखना मनुज को अमर लोक का वास करा देता है और जो व्यक्ति इसका पालन नहीं करते, उसे नरक भोगना पडेगा। महाकवि तिरुवल्लुवर के कुरल में उक्त विचार यूँ व्यक्त हुआ है।

अडक्कम अमररुल उय्क्कुम अडंगामै

आरिरुल उय्त्तु विडुम।

अध्याय - संयमशीलता।

एक और परिप्रेक्ष्य में कहते हैं -

बिना टले निजधर्म से जो हो संयमशील।

पर्वत से भी उच्चतर होगा उसका डील।

निलैयिल तिरियादु अडंगियान तोट्ृरम

मलैयिनुम माणप्पेरिदू।

कबीरदास के अनुसार जातिपाति, बाह्याडंबर, तीर्थ-यात्रा, मूर्तिपूजा आदि के नाम पर पाखंड और अनाचार बढ़गए हैं, इससे नैतिक पतन तक हो गया। मानव कल्याण की अपेक्षा समाज कल्याण की ओर ध्यान देनेवाले संत लोग ऐसे अनाचार देख नहीं सकते थे। वैसे तो हमें ज्ञात है मूर्ति पूजा के संबंध में कबीरदास की उक्ति यहाँ समीचीन है -

पाहनपूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूँपहार।

ताते था चाकी भली, पीस खाय संसार।

और एक संदर्भ में सिद्धर ज्ञानक्कोवै का कथन है,

“कर्मकाण्डदि में फंसे हुए हैं गूंगे लोगों।

क्या पत्थर कहीं देव हो सकता है? तुम्हारे

इस काम पर हँसी आती है।” कहकर

- सिद्धर ज्ञानक्कोवै -पृ 20- पद्य 126.

शिववाक्कियर ने सिद्धर अपना विरोध प्रकट किया है।

इसके अतिरिक्त पांपाट्टि सिद्धर ने ;तमिल केद्ध भी मूर्ति पूजा के संबंध में निम्नप्रकार प्रतिपादित किया है - हर देश में मंदिर स्थापित कर पूजा करने मात्र से कोई भगवान के चरण नहीं पा सकते।''

;सिद्धर ज्ञानक्कोवै पृष्ठ-196 पथ्य - 91द्ध

संत पट्टिनत्तार ने भी उपर्युक्त विचार को स्पष्ट कह दिया है कि पत्थर रूपी भगवाने की पूजा न करूँगा। बाहरी पूजा व्यर्थ है। कहना यह चाहते हैं कि भक्त के अंतर मन में जो पुनीत संवेदना भाव निहित है एवँ अच्छे कर्मा के स्मरण से भगवान को प्राप्त कर सकते हैं।

नित्य नैमित्तिक नियम, भिन्न-भिन्न भगवान को लक्ष्यकर ध्यान करना वेदागम का परायण, होम तर्पण-संध्यावंदन आदि भिन्न-भिन्न मंत्रों का उच्चारण करना, योग-ध्यान में लीन रहना, चन्दन-त्रिपुण्डरादि धारण करना - ये सब धोखा ही है जो अपना कर्म को भूलकर समय गंवारकर चलता है।

नेमंगणिट्टैकल वेदंगालगम नीतिनेरि

योमंगदर्पण जपमंत्र योगनिलै

नामंगल वेण्णीरू पूशि अलमुडने

जामंगडोरू मिवर चेय्युम् पूजैगल चर्पनये।

;पट्टिनत्तार प्रबंध तिरट्टु - पृ 57- पथ्य 44द्ध

यदुगिरियान ने कहा है, उस परात्पर का दर्शन कंब कर सकूँगा। जो ;शास्त्रादिद्धपढ़ने से प्राप्त नहीं होता।

वाशित्तुंगाणामल वायविट्टुम पेशामल

पूजित्तुंतोन्दार परंपोरुल काण्पदेक्कालम

यदुगिरियार पुलंबल - सिद्धर उरै ज्ञानक्कोवै - 177 -65।

सौ करोड़ पुकार के मंत्र, सौ करोड़ आगम, सौ करोड़ दिन कलों न पढ़े, तो भी कोई फायदा नहीं।

यहाँसंतों ने बाहरी आडंबर का खण्डन जोरदार शब्दों में किया है। उन्होंने बार-बार कहा है कि जिस भगवान के दर्शनार्थ तुम बाहर भटक रहे हो, वह तुम्हारा घर में ही व्याप्त है। लेकिन मनुष्य इसको नहीं पहचानता, वह तो कस्तूरी का मिरग ज्यों इधर-उधर ढूँढ़ता रहता है। जैसे -तेरा साई तुझमें ज्यूँ पुहपन मे बास।

कस्तूरी का मिरग ज्यों धास फिर-फिर ढूंढे।

इन संतों के उपदेशों का सारलक्ष्य है कि लोगों को अंतर्मुखी बनाना। हिन्दी और अन्य भाषाओं के संतों ने घर में भगवान की स्थिति का वर्णन किया है। शिववाक्कियर ने उक्त विचार को तमिल में यूँ कहा है -

''पूविले नारकल पोल पोरुन्दि

निन्ड् पूरणम।''

तीर्थ - यात्रा करने मात्र से कोई भगवान का सानिध्य प्राप्त नहीं करता मन की मैल दूर होनी चाहिए।

कबीरदास का कहना है-

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।

मीन सदा जल में रहै, धोये वासन जाय।

इसी बात को पाम्पाट्टिचित्तर ने भी कही है -

नारुमिलै पलतरम नल्ल तण्णीराल

नालुड्ण्क्कलु विनुमदन नाट्रम पोमो?

कूरुमुइट् पल नदियाडिक्कोण्डदाल

कोण्डमलम नींगादेन्नु आडु पाम्बे।

सिद्धर ज्ञानक्कोवै - पाम्पाट्टि सिद्धर - पृ़ 192 - 64

;अर्थात दुर्गन्ध युक्त मछली को साफ पानी में धोने पर भी उसका दुगन्धु नहीं जाता। इसी तरह केवल तीर्थाटन करने मात्र से मन की मैला नहीं जातीद्ध

शास्त्रों का अध्ययन कर कई लोग मृत्यु को प्राप्त हो गये, लेकिन सच्चा ज्ञानी कोई नहीं। इसलिए तो पाम्पाट्टि सिद्धर ने कहा है - चतुर्वेद, षड़शास्त्र, पुराण आगम और अन्यान्य ग्रन्थ सब व्यर्थ है। यह कहते हुए -हे सांप तुम नाचो।

सिद्धर ज्ञानक्कोवै - पाम्पाट्टि सिद्धर - पृ 197 - 98

कबीरदास भी लोगों को बताया - इन शास्त्रों को पढ़कर अपना समय व्यर्थ करने की अपेक्षा तुम ढाई अच्छर प्रेम पढ़ लो और प्राणी मात्र से प्रेम करना सीखो, तो पण्डित हो जाओगे - जैसे

पोथी पढ़ि पढ़ि जगमुआ, भया न पंडित कोय।

ढाई अच्छर प्रेम का पढै सो पण्डित होय।।

बाह्याडंबर का आक्रोश कवियों ने अनेक ढंग से किया है। आधुनिक कवि रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी कविता ‘हुंकार’ में अमीर लोगों की मस्तभरी जिन्दगी और गरीबों की दयनीय जीवन को निम्न रूप में अभिव्यक्त किया है -

श्वानों को मिलता दूध - वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,

माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाडों की रात बिताते हैं।

युवति के लज्जा - वसन बेच जब व्याज चुकाये जाते हैं,

मलिक जब तेल सुगंधित फुलोलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,

पापी महलों का अहंकार तब देता मुझको आमंत्रण,

झन -झन -झन -झन -झन -झनन -झनन।

उक्त पक्तियों के माध्यम से समाज में उच्च वर्ग एवँ निम्न वर्ग में निहित अंतर का बोध होता है। अमीर लोग अपने घर के कुत्ते को भी दूध, कपड़े और अन्य सुविधाएँ प्रदान करते हैं लेकिन दूसरी तरफ भूखे बालक खान-पान के लिए बेचयन रहते हैं। एवँ बिना कपड़ों के माँ की हड़डी से चिपक्कर जाड़ों की रात बिताते हैं। जब युवति लज्जित शरीर बेचकर उनका ब्याज चुकाये जाते हैं तो मालिक अपने शरीर पर सुगंधित तेल पानी जैसे द्रव्य बहाने हैं। उस वक्त पापी महंतों का अहंकार देखकर मुझे झन -झन की आवाज से गुस्से का आमंत्रण देता है।

और एक संदर्भ में सुमित्रानंदन पंत की 'ताज' नाम की कविता में मृत शरीर एवँ कब्र के लिए अनावश्यक एवं आडंबर पूर्ण खर्च का उल्लेख यूँ करते हैं -

हाय। मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन? जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन। संग - सौध में हो शृंगार मरण का शोभन, नग्न, क्षुतातुर, वास विहीन रहें जीवित जन ?

इन पक्तियों में कविने उन लोंगों को व्यलंग्य किया है जो मृतकों को अमर बनाने हेतु उनकी आस्ता एवँ पूजा करते हैं। और लाश को जिन्दा मनुष्य की तरह संवारा और सजाया जाता है। मृदों को जीवित लोगों की तरह बड़ी सुंदरता से उनका श्रृंगार किया जाता है। जब कि दूसरी ओर लोग भूख से मर रहे हैं। जीवित लोग नंगे हैं, भूखे हैं, प्यास से व्याकुल हो रहे हैं, उनके पास रहने के लिए घर नहीं है। जिंदा लोगों के लिए जिन्दा रहने के लिए सुविधाएँ नहीं हैं तो ऐसे में मृत लोगों के लिए ताजमहल जैसा भवन बनाना कहाँ तक उचित है। जीवित लोगों की सेवा करना जीवन का सार एवँ आवश्यक तत्व है।

मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?

आत्मा का अपमान, प्रेत और छाया से रति।।

प्रेम-अर्चना यही करें हम मरण को चरण ?

स्थापित कर कंकाल भरे जीवन का प्रांगण ?

शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का। कवि ने उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो आज भी ताजमहल जैसी रूढ़िवादी स्मारक को अपने दिल में समाए उनकी पूजा करते आए हैं। वे भ्रम के साए में जी रहे हैं। उनका हृदय यह तय कर पा रहा है कि किसे अपने दिल में स्थान दें और किसे नहीं। यह सब बाह्याडंबर का उदाहरण सिद्ध होता है। लेकिन हमें आज उचित विकल्प अपनाकर सही रास्ते पर आना है। और जो मर गए हैं उनकी जिम्मेदारी मृतकों को लेने दें। और जो जीवित लोग हैं - वह ईश्वर को साक्षी मानकर कर्म करते जाए। यानी जीवित लोगों को सेवा करें।

इसलिए हमें होना यह चाहिए कि बाहरी कृत्रिम एवँ दिखावटी प्रवृत्ति को छोड़कर प्रेरणादायी कार्यो में ध्यान देकर सामाजिक व्यवस्था से मिथ्याडंबर, धडक-भडक जीवन शैली हटाकर यथार्थ कार्य में दिल लगाएँ। जिनसे भारतीय समाज एवँ परिवार में सुधार एवँ विकास हों। सही मायने में कवियों, सिद्धर एवँसाधु लोगों ने जो अमूल्य विचार प्रकट किए हैं उनकी भलाई की ओर ध्यान आकर्षित करना उचित ही जान पड़ता है।